इकाई 30 व्यापार और शहरी केन्द्रों का विस्तार

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य 200 ई. पू. से 400 ई. तक दक्षिण भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के विभिन्न आयामों पर संक्षेप में चर्चा करना है। इस इकाई में सातवाहन राज्य और चेरों, चोलों और पांड्याओं के तथा कम महत्वपूर्ण सामंतों के अधीन सुदूर दक्षिण के क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- विनिमय का स्वरूप जिससे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत में विभिन्न स्तरों पर व्यापार का स्वरूप निर्धारित हुआ;
- परिवहन और संचार सुविधाओं;
- व्यापार में विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के;
- व्यापार में राजनीतिक प्राधिकारियों के हितों;
- दक्षिण भारत में शहरी केन्द्रों; और
- प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज पर व्यापार और शहरीकरण के प्रभाव के बारे में जान सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

इकाई 29 में आपने कृषिक बस्तियों और कृषिक समाज के बारे में पढ़ा है। इस इकाई में हम व्यापार और शहरीकरण के रूप में अर्थव्यवस्था के अन्य ऐसे पहलुओं पर चर्चा करेंगे जिनसे प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत के समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सहायता मिली।

प्रायद्वीपीय भारत में, व्यापार की वृद्धि और शहरी केन्द्रों का उद्भव कोई पृथक घटना नहीं थी, बल्कि उन अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तनों से भी बहुत अधिक जुड़े हुए थे जो उस समय क्षेत्र में हो रहे थे। वे परिवर्तन निम्नलिखित कारकों से उत्पन्न हुए थे :

- प्रमुख नदी घाटियों में कृषि की प्रगति द्वारा उत्पन्न प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न भागों में समाज के अंदर परिवर्तन। कुछ हद तक यह महाद्वीपीय महापाषाणकालीन संस्कृति (देखिए इकाई 29) की लौह प्रौद्योगिकी तथा सिंचाई से जुड़ी हुई थी। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ हिस्सों में कृषि उत्पाद अधिशेष मात्रा में उपलब्ध थे।

- प्रायद्वीपीय भारत में मौर्य-राज्य के विस्तार के फलस्वरूप उत्तर के साथ अधिक सम्पर्क बना तथा व्यापारियों, सौदागरों तथा अन्य व्यक्तियों का अधिक आवागमन हुआ। इसका प्रमाण **अर्थशास्त्र** में दक्षिणी मार्ग (**दक्षिण पथ**) के लाभों के वर्णन मिलते हैं। इसके अलावा, समुद्र तट के साथ सम्पर्क भी थे। इस प्रकार प्रायद्वीपीय भारत में पहले की विनिमय प्रणाली और नेटवर्क में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

- पहली सदी ई.पू. के आसपास पश्चिम के रोमन विश्व में भारतीय सामान की मांग बढ़ी और इसमें एक और कारण जुड़ा जिससे वहां के सौदागर तथा जहाज़ प्रायद्वीपीय भारत के निकटतम सम्पर्क में आए। इससे व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिला।

- इन सभी में फिर दस्तकारी विशेषज्ञता या दस्तकारी की मदों के उत्पादन में दक्षता की प्रगति जुड़ी, जिसके फलस्वरूप स्थानीय विनिमय के लिए या दूरस्थ व्यापार के लिए समाज के ऊंचे सदस्यों की आवश्यकता हुई। उदाहरण के लिए, विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन, मनके बनाना, शीशे का काम, वस्त्रों की बुनाई – इन सभी के लिए भिन्न-भिन्न दक्षता की आवश्यकता हुई।

फिर भी यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि इन परिवर्तनों द्वारा भारत का प्रत्येक भाग समान रूप से प्रभावित नहीं हुआ। कुछ ऐसे स्थान थे, या ऐसे स्थान बने रहे जिनमें पिछली संस्कृति ज्यों की त्यों बनी रही। दूसरा, दक्खन और सुदूर दक्षिण में दक्खन के भिन्न-भिन्न भागों में परिवर्तन अधिक सुस्पष्ट थे। शुरू में सुदूर दक्षिण में परिवर्तन धीरे-धीरे और सीमित क्षेत्र में हुए।

व्यापार और शहरी केन्द्रों की वृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर निम्नलिखित शीर्षकों के अधीन अध्ययन किया जा सकता है :

- स्थानीय लेन-देन और दूरस्थ व्यापार में विनिमय तंत्र,
- श्रेणियों का संगठन,
- परिवहन, भंडारण और नौवहन,
- विनिमय का माध्यम,
- व्यापार से राजस्व,
- शहरी केन्द्र, और
- व्यापार तथा शहरीकरण द्वारा उत्पन्न आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन।

30.2 व्यापार के प्रकार

आपने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों और उनके उत्पादों के बारे में पढ़ा है। प्रत्येक क्षेत्र को अन्य क्षेत्रों की वस्तुओं से किसी वस्तु का विनिमय करना होता था। साथ ही इनमें से प्रत्येक क्षेत्र में किसी न किसी ऐसी वस्तु की कमी होती थी जो उनके समाज के लिए आवश्यक थी। कृषि क्षेत्र खाद्यान्न और गन्ना पैदा करते थे, किन्तु नमक और मछली के लिए उन्हें तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। तटीय क्षेत्रों में नमक और मछली का उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में होता था परन्तु चावल और प्रमुख भोजन धान उत्पादक क्षेत्रों से लाना पड़ता था। पहाड़ी क्षेत्र इमारती लकड़ी और मसालों आदि में समृद्ध थे परन्तु खाद्यान्नों और नमक के लिए उन्हें कृषि क्षेत्रों तथा तटीय क्षेत्रों पर निर्भर रहना पड़ता था। इस प्रकार की पारस्परिक निर्भरता का परिणाम यह हुआ कि विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विनिमय संबंध उभरे। दक्षिण में उपलब्ध कुछ वस्तुओं की मांग उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों में हुई और यहां तक इन वस्तुओं की मांग अन्य देशों तथा संस्कृतियों में भी हुई। उन सुदूरवर्ती देशों द्वारा स्थल मार्ग या समुद्री मार्ग से सम्पर्क बनाए गए और आवश्यक वस्तुएं प्राप्त की गई। इस प्रकार, हम व्यापार के तीन स्तरों की पहचान कर सकते हैं :

i) स्थानीय व्यापार

ii) दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

iii) दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार

30.2.1 स्थानीय व्यापार

स्थानीय विनिमय के संदर्भ में लेन-देन का सबसे सामान्य तरीका वस्तु विनिमय था। वस्तु विनिमय की अधिकांश वस्तुएं तत्कालिक उपभोग की थीं। सुदूर दक्षिण में वस्तु विनिमय की नियमित वस्तुएं नमक, मछली, धान, दूध उत्पाद, जड़ें, मृग मांस, शहद और ताडी थी। नमक का विनिमय धान से होता था, धान का विनिमय दूध, दही और घी से होता था, मछली तथा शराब के लिए शहद दिया जाता था, मृग मांस और ताड़ी के लिए चावल पपड़ियां और गन्ना दिया जाता था। अत्यन्त दुर्लभ, विलासिता की वस्तुएं जैसे मोती तथा हाथी दांत भी वस्तु विनिमय की मदें थीं। वे भी उपभोग की वस्तुओं जैसे चावल, मछली, ताड़ी आदि के लिए दी जाती थीं।

तमिल दक्षिण में वस्तु विनिमय प्रणाली में ऋण लेने की प्रथा प्रचलित नहीं थी। किसी वस्तु की निश्चित राशि का ऋण लिया जा सकता था और बाद में उसी प्रकार तथा उसी मात्रा में वही वस्तु लौटा दी जाती थी। यह प्रथा **कुरीटिरपई** कहलाती थी।

विनिमय दर निश्चित नहीं थी। वस्तुओं की कीमत केवल मोल-तोल से ही तय की जाती थी। धान और नमक केवल दो वस्तुएं ही ऐसी थीं जिनके लिए सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निश्चित विनिमय दर थी। धान की समान मात्रा के बराबर नमक दिया जाता था।

सातवाहन शासन के अधीन दक्खन में सिक्कों का आम प्रचलन था। इसपर भी वस्तु विनिमय का प्रचलन जारी था। मिट्टी के बर्तन, पान, खिलौने और ट्रिंक्लेट जैसी दस्तकारी उत्पाद ग्रामीण क्षेत्रों में विनिमय वस्तुएं थीं।
सुदूर दक्षिण की वस्तु विनिमय प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएं ध्यान देने योग्य हैं :

i) विनिमय की अधिकांश मदें उपभोग की वस्तुएं थीं।

ii) विनिमय लाभोन्मुखी नहीं था।

iii) उत्पादन की तरह वितरण भी आजीविका का साधन था।

30.2.2 दूरस्थ स्थल मार्ग व्यापार

भारत के उत्तरी और दक्षिणी भाग के बीच विभिन्न क्षेत्रों में सम्पर्क यदि काफी प्राचीन नहीं रहा हो तब भी वह कम से कम चौथी शताब्दी ई.पू. से तो हो ही सकता है। विंध्याचल पर्वत श्रेणियों के दक्षिण में उस क्षेत्र के जो भी संसाधन थे, उत्तर में ज्ञात थे। प्राचीन बौद्ध साहित्य में जिस मार्ग का हवाला मिलता है, वह गंगा की घाटी से गोदावरी की घाटी में जाता था। यह दक्षिण पथ के नाम से जाना जाता था। अर्थशास्त्र के रचियता कौटिल्य ने इस दक्षिणी मार्ग के लाभों के बारे में लिखा है। कौटिल्य के अनुसार, दक्षिण राज्य क्षेत्रों में शंखों, हीरों, जवाहरातों, रत्न-मणियों और स्वर्ण विपुल मात्रा में था। इसके अलावा, ये मार्ग उन क्षेत्रों से होकर जाता था, जो समृद्ध खनिज पदार्थों और मूल्यवान वस्तुओं से भरपूर था। उनके कथनानुसार उस समय इस मार्ग से बहुत से लोगों का बार-बार आना-जाना था। वह मार्ग दक्षिण के प्रतिस्थान नगर सहित वहां के बहुत से केन्द्रों से होकर जाता था। प्रतिस्थान नगर बाद में सातवाहन राजाओं की राजधानी बनी थी। इस उत्तर-दक्षिण की अधिकांश मदें विलास की वस्तुएं थीं जैसे मोती, रत्नमणि और स्वर्ण। उत्तर और दक्षिण के बीच उत्तम किस्मों के वस्त्रों का व्यापार भी होता था। संभवतः श्रेष्ठ कोटि का रेशम कलिंग से आता था। इस महीन रेशम का नाम **कलिंग** था, स्पष्ट है कि इस रेशम का उस स्थान के नाम पर था, जहां इसका उत्पादन होता था। वह एक ऐसी मद थी, जिसे तमिल के सामंत पसंद करते थे। जो भाट, सामंतों की प्रशंसा का गुणगान करते थे, उन्हें बेशकीमती उपहार के रूप में कलिंग रेशम मिलता था। उत्तर कृष्ण मृद्भांड (एन.बी.पी.) नाम के सुन्दर किस्म के मिट्टी के बर्तन सुदूर दक्षिण में लोकप्रिय थे। पुरातत्वविदों ने खुदाई में पांड्या वंश के प्रारंभ के राज्यों में कुछ उत्तर कृष्ण मृद्भांडों को निकाला है।

उपर्युक्त मदों के अलावा, दक्षिण में मिट्टी के टूटे बर्तनों और मसालों की कुछ मदें भी मिली हैं। इनमें जटा मांसी और मालावथुम (मरहम बनाने के लिए जड़ी-बूटी) भी शामिल थे। इन मदों को पश्चिमी देशों में जहाज़ से ले जाया जाता था।

उत्तरी भारत के व्यापारी बहुत बड़ी मात्रा में चांदी के आहत सिक्से भी लाते थे। दक्षिण के भिन्न-भिन्न स्थानों से खुदाई के दौरान बहुत बड़ी मात्रा में ये सिक्के पाए गए। ये उत्तर और दक्षिण के बीच वाणिज्यिक सम्पर्क के प्रमाण हैं। उत्तर भारत के साथ दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था और इस व्यापार का लाभ केवल शासक वर्ग और उनके व्यक्तियों को ही होता था।

30.2.3 दूरस्थ समुद्री मार्ग व्यापार

भारतीय वस्तुएं जैसे मसाले, रत्न-मणियों, इमारती लकड़ी, हाथी-दांत और कई अन्य वस्तुओं की मांग पश्चिमी देशों में बहुत अधिक थी। इन वस्तुओं का मुख्य स्रोत दक्षिण भारत था। प्रारंभिक काल से ये वस्तुएं पश्चिमी देशों को समुद्री मार्ग से जाती थीं। रोमन विश्व से सीधा व्यापार था, इसमें बहुत बड़े पैमाने पर लेन-देन होता था और इससे लाभ भी बहुत ज्यादा होता था। हमारे पास इसके प्रमाण लगभग पहली शताब्दी ई.पू. से हैं और यह प्रायद्वीपीय भारत की अर्थव्यवस्था तथा समाज के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इस प्रायद्वीपीय भारत से रोमन के वाणिज्यिक सम्पर्क की दो अवस्थाओं का उल्लेख करेंगे।

i) प्रथम अवस्था में, बिचौलिए के रूप में अरब देश।

ii) दूसरी अवस्था में, मानसूनी हवाओं के ज्ञान के फलस्वरूप सीधा सम्पर्क स्थापित किया गया था।

काफी समय तक अरब सागर में नौवहन तट के साथ-साथ होता था। यह बहुत कठिन और खर्चीला था। अरब देशों ने ईस्वी सदी शुरू होने से पहले समुद्र को मुख्य मार्ग बनाते हुए भारत के साथ वाणिज्यिक संबंध बना लिए थे। अरब देशों की भौगोलिक स्थिति पूरब पश्चिम के व्यापार में उनकी एकाधिकार की स्थिति बनाने के लिए बहुत सुविधाजनक थी। उन्हें अरब सागर में पवन प्रणालियों का भी कुछ ज्ञान था उन्होंने इसे व्यापार रहस्य के रूप में गोपनीय रखा था। इस प्रकार, अरब देशों ने बिचौलिए का काम किया तथा प्रायद्वीपीय भारत से व्यापार में काफी लाभ अर्जित किया था।

मानसूनी हवाओं की "खोज" से जिसका श्रेय हिप्पालुस नाम के नाविक को है, रोमनों द्वारा भारत के साथ सीधा संबंध स्थापित हुआ। इससे रोमन और प्रायद्वीप भारत के बीच व्यापार में वृद्धि का सूत्रपात हुआ। रोमन अपना सामान भारतीय बंदरगाहों में लाते थे जिनमें कच्चा माल और तैयार उत्पाद, दोनों होते थे। कच्चे माल में तांबा, टीन, सीसा, पुखराज, चकमक, शीशा (मनका बनाने के लिए कुछ सामग्री के रूप में) होता था। तैयार उत्पादों में उत्तम कोटि की शराब, सुंदर बनावट के वस्त्र, मनमोहन आभूषण, स्वर्ण ओर चांदी के सिक्के तथा भिन्न-भिन्न किस्मों के श्रेष्ठ मिट्टी के बर्तन होते थे।

रोमनों द्वारा बहुत बड़ी मात्रा में प्रायद्वीपीय भारत से पश्चिमी देशों को वस्तुएं जहाज़ में लादी जाती थी। उन्हें हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :

i) मसाले और औषधीय जड़ी-बूटियां जैसे जट मांसा, मालबाथरूम सिनबार।

ii) मूल्यवान रत्न, अल्प मूल्य रत्न जैसे बेरिल, ऐगेट (गोमेद), कर्नीलियन, जैस्पर और ओनीक्स तथा शंख. मोती एवं हाथी-दांत भी।

iii) इमारती लकड़ी जैसे तेन्दु, सागौन, चंदन की लकड़ी, बांस।

iv) रंगीन सूती वस्त्रों और मलमल की वस्तुएं तथा नील एवं लाख जैसी रंजक सामग्री।

निर्यात की उपर्युक्त वस्तुओं में मनके और सूती वस्त्र तैयार माल होते थे।

भारतीय माल के लिए रोमन अधिकतर सोना देते थे। निर्यात की अधिकाश वस्तुएं स्थानीय रूप से उपलब्ध थीं और भारतीय व्यापारियों द्वारा स्वयं ही दक्खन तथा दक्षिण भारत में सौदे एकत्रित किए जाते थे। उन्हें बंदरगाहों तक लाने के लिए वैगनों और पैकटों में भारवाही पशुओं को काम में लाया जाता था।

यद्यपि दक्खन तथा दक्षिण भारत में भारतीय समुद्री व्यापारी थे परंतु ज्यादातर विदेशी समुद्री व्यापारी ही पश्चिमी देशों को सामान भेजते थे।

दक्षिण भारत के व्यापारिक संबंध श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया से थे। इस व्यापार की महत्वपूर्ण वस्तुएं कुछ मसाले, कैम्फर और चंदन की लकड़ी थी।

संभवतः तमिल मूल के व्यापारी इस व्यापार में पहल करने वाले थे। श्रीलंका के व्यापारी भी तमिलहम् आते थे। तमिल ब्राह्मी अक्षरों के शिलालेखों में उनका उल्लेख है जो ईलम (श्रीलंका) से आए थे। परन्तु इस व्यापार के विस्तृत ब्यौरे ज्ञात नहीं हैं।

30.3 वाणिज्यिक संगठनों के पहलू

बहुधा उत्पादक भी थोड़ा-बहुत स्थानीय व्यापार करते थे।

मछली पकड़ने और नमक बनाने का काम पूर्णतः परावटा समुदाय द्वारा किया जाता था। ये समुदाय नेयटाल (तटीय) प्रदेश में रहते थे। इसका उल्लेख संग क्षेत्र में किया गया है और इस प्रकार वे अपना सम्पूर्ण समय इन कार्यों में लगाते थे। इसलिए मछली और नमक के वितरण में भिन्न-भिन्न तरीके अपनाए गए थे।

मछुआरे परिवारों की महिलाओं द्वारा मछलियाँ समुद्र तट के निकटवर्ती क्षेत्रों में ले जाई जाती थीं। वे ग्रामीण मेलों और अन्य ग्रामीण समागम के स्थानों में दिखाई देती थीं। नमक अनिवार्य वस्तु होने के कारण इसकी मांग सर्वत्र थी। नमक के वितरण का काम अलग दल करता था। नमक के व्यापारियों को तमिलम् में उमाना के रूप में जाना जाता था।

तटीय क्षेत्रों और निकटवर्ती ग्रामों में उमाना हॉकर लड़कियां अपने सिर में नमक की गठरियां ले जाती थीं और मुख्य रूप से धान के बदले इसे देती थीं।

भीतरी ग्रामीण क्षेत्रों में नमक उमाना ले जाते थे। नमक के बड़े-बड़े थैले गाड़ियों में ले जाए जाते थे, जिन्हें बैल अथवा गधे खींचते थे। नमक के व्यापारी बड़े-बड़े झुंडों में जाते थे। नमक के ये कारवां उमानवुथ कहलाते थे। वे नमक को स्थानीय उत्पादों के बदले देते थे। इस प्रकार, उमानवुथ क्षेत्र के विभिन्न भागों से सौदे की वस्तुएं एकत्रित कर्ता के रूप में कार्य करते थे।

उमाना अपने परिवार के साथ कारवां में जाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि परिवार के सदस्यों के अलावा, अन्य कोई संगठन नमक के व्यापारी के रूप में नहीं था, नमक व्यापारियों के अलावा, अनाज (कूलावानेकन), कपड़े (अरूवैवानिकन), स्वर्ण (पोन वनिकन), चीनी (पानीटा वनिकन) के व्यापारी थे। इनका वर्णन कुछ योगियों के निवास स्थान दाता के रूप में कुछ प्राचीन गुफाओं के शिलालेखों में मिलता है। इससे यह ज्ञात होता है कि वे धनाढ्य थे। उनके व्यापार और संगठन के बारे में कुछ ज्ञान नहीं है। सुदूर दक्षिण में तिरुवेल्लारी के व्यापारियों के संगठन का एक शिलालेख में उल्लेख है।

तिरुवेल्लारी में संगठन के सदस्यों का वर्णन निकामट्टार के रूप में किया गया है, जिसका अर्थ निगम, संघ का सदस्य है।

तमिलम् में व्यापारियों का संगठन एक दुर्लभ बात है। परन्तु दक्खन में व्यापारियों का संघ अथवा एसोसिएशन एक नियमित घटना है। वहां कई कस्बे थे और प्रत्येक कस्बे का संभवतः संघ या निगम होता था। प्रत्येक संघ का एक मुखिया (सेट्टी) था और उसका कार्यालय होता था। व्यापारियों का संघ बैंक के रूप में काम करता था। यह जमा राशि लेता था और धन बाहर कर्ज भी देता था। बुनकरों, कुम्हारों, तेलियों, बांस का काम करने वालों, ठठेरों आदि के संघ थे। इस बात की जानकारी दक्खन के शिलालेखों में मिलती है। परिवार इकाई की अपेक्षा कार्यकारी इकाई के रूप में संघ अधिक सक्षम था। एकता की शक्ति के अलावा, संघ अपने सदस्यों को वित्तीय सहायता सहित सभी प्रकार की सहायता देता था। इसके अलावा, प्रत्येक सदस्य को ग्राहक ढूंढने की जिम्मेदारी से भी राहत मिलती थी।

इस प्रकार, सातवाहन के अधीन राज्य क्षेत्र में व्यापार के संगठन की प्रणाली अपेक्षाकृत उन्नत थी।

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन दक्षिण भारत में वस्तु विनिमय प्रणाली की तीन विशेषताएं बताइए।

....

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित कथनों में सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए:

i) वस्तु विनिमय की अधिकांश मदें विलासिता की थीं। ( )

ii) "कुरिएटिरप्पई" का अर्थ वह वस्तु विनिमय है जिसमें किसी वस्तु की निश्चित मात्रा ऋण में ली जाती है और बाद में उसी रूप में तथा उसी मात्रा में वापस की जाती है। ( )

iii) कौटिल्य ने सोचा कि दक्षिणी मार्ग श्रेष्ठ था, क्योंकि यह अन्य मार्गों की अपेक्षा कम खतरनाक था। ( )

iv) दक्षिण भारत पश्चिमी देशों को केवल कच्चे माल का निर्यात करता था और पश्चिमी देशों से तैयार माल का आयात करता था। ( )

v) दक्खन में व्यापारी संघ बैंक के रूप में काम करते थे, जो जमाराशि लेते थे और ऋण पर धन देते थे। ( )

2) तमिलहम में नमक कारवां पर तीन पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

4) दक्खन व्यापारी संगठनों के बारे में पाच पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

30.4 विनिमय सुविधाएं

लम्बी दूरी के व्यापार में परिवहन, भंडारण और नौवहन की सुविधाएं, विशेष रूप से, प्रासंगिक हैं जिसमें बहुत बड़े पैमाने में वस्तुओं को ले जाने की समस्या होती है। सुदूर दक्षिण में मिर्च, धान और नमक को ले जाने की समस्या थी जिन्हें बहुत बड़ी मात्रा में ले जाना होता था। पश्चिमी देशों से पश्चिमी दक्खन में इमारती लकड़ी की भी बहुत भारी मांग थी। भारवाही पशु और ठेले अंतर्देशीय परिवहन के लिए प्रयुक्त किए जाते थे।

तमिलम् में कई रास्ते थे, जो नदी घाटियों में भीतरी बस्तियों, बंदरगाहों और राजधानियों को जोड़ते थे। ऐसा ही एक मार्ग कावेरी की घाटी के पश्चिमी क्षेत्र से चोल बंदरगाह कावेरी-पुम्पट्टिनम् को जाता था। एक अन्य मार्ग पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र से कांचीपुरम् को जाता था। कांचीपुरम् स्थानीय सामंत की राजधानी थी और पश्चिमी तट का प्रसिद्ध "नगर" था।

नमक कारवां और अन्य व्यापारी ऐसे यात्री थे जो इन मार्गों से जाते थे। कारवां बड़े-बड़े दल बनाकर जाते थे। व्यापारियों के अलावा, बहुधा भाट, चारण, नृतक, संदेशवाहक, बैद्य आदि भी ऐसे मार्गों से एक स्थान से दूसरे स्थान में जाते रहते थे। ये लोग भी कारवां के साथ जाना पसंद करते थे क्योंकि यात्रा अधिकतर खतरनाक होती थी। अधिकांश मार्ग घने जंगलों और पहाड़ों के उपर से होकर जाते थे, जहां जंगली जनजातियां रहती थीं। व्यापारियों को राहजनी का खतरा रहता था और शासकों से किसी प्रकार के प्रभावी संरक्षण के अभाव में कारवां के साथ उनके अपने अंगरक्षक नियुक्त रहते थे।

सातवाहन के अधीन राज्य में स्थिति कुछ भिन्न थी। उत्तर से दक्षिण को मुख्य मार्ग उज्जैयिनी से सातवाहन राज्य की राजधानी प्रतिस्थान (पठाण) शहर को जाता था। प्रतिस्थान से यह दक्खन के पठार को पार करते हुए दक्षिण के प्रसिद्ध शहरों कांची और मदुरै को जाता था। ईसवी काल के प्रारंभ में विकसित मार्गों का जाल इस पुराने मार्ग को पश्चिमी

तट के अंतर्देशीय बज़ारों तथा कस्बों और बंदरगाहों को क्षेत्र के भीतरी भाग के उत्पादक क्षेत्रों से मिलाता था। गोदावरी और कृष्णा की उपजाऊ घाटियों के भी मार्गों के ऐसे जाल थे जो तटीय शहरों की भीतरी भागों से जोड़ते थे।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि दक्खन की कुछ प्राचीन प्रसिद्ध बौद्ध गुफाओं तथा धार्मिक केन्द्र इन व्यापारी मार्गों में थे। व्यापारी कारवां के लिए ये धार्मिक केन्द्र बहुत से मामलों में उपयोगी थे। उन्हें भोजन और आवास देने के अलावा वे उन्हें ऋण तक भी देते थे। शासक भी इन मार्गों की देखभाल पर रुचि दिखाते थे। उन बौद्ध धार्मिक स्थापनाओं को वे उदारतापूर्वक दान देते थे, जो मार्गों में स्थित थे। उन्होंने बंदरगाह नगर में विश्रामगृह बनवाए और मार्गों में प्याऊ स्थापित किए। उनके रख-रखाव के लिए अधिकारी भी नियुक्त किए गए। दुर्भाग्यवश मार्गों की सुरक्षा प्रबंधों के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।

बहुधा मार्गों में नदियां पार करनी पड़ती थीं। ऐसे स्थलों पर नौघाट स्थापित किए गए थे और व्यापारियों से कर वसूल किया जाता था। कुछ नौघाट निःशुल्क भी थे।

लम्बे समुद्र तट और कई नदियों के प्रवाह से जानकारी होने के फलस्वरूप दक्षिण भारतीय समुद्री तथा नदियों के नौवहन को जानते थे। नौघाटों को पार करने तथा नदियों के नौवहन के लिए छोटी नौकाओं का प्रयोग किया जाता था। बड़े जहाज़ों के निर्माण तथा उनके प्रयोग से समुद्री यात्रा संभव हुई।

तमिलहम् में नौवहन मुख्य रूप से तटवर्ती क्षेत्रों में सीमित थी। श्रीलंका के साथ कुछ व्यापारिक संबंध थे। श्रीलंका (ईलम) के व्यापारियों का उल्लेख दक्षिण भारत के शिलालेखों में मिलता है। इसी प्रकार, श्रीलंका के कुछ प्रारंभिक शिलालेखों में तमिल व्यापारियों का उल्लेख दानदाता के रूप में मिलता है। इन प्रमाणों से पता चलता है कि तमिल के व्यापारी समुद्र व्यापार में भाग लेते थे।

दक्खन में ऐसे भी व्यापारी थे, जो खास तौर पर समुद्री व्यापार में लगे हुए थे। मारूकच्छा में जहाज़ों की उपस्थिति के बारे में उस समय के साहित्य से जानकारी मिलती है।

प्रायद्वीपीय भारत के व्यापारी खास तौर पर वे जो दक्खन के थे, विदेशी व्यापार में लगे हुए थे मिस्र और अलेक्ज़ेंडरिया में कुछ भारतीय व्यापारियों की मौजूदगी की जानकारी उस समय के विदेशी साहित्य में मिलती है।

राजा के प्राधिकारी समुद्री व्यापार के महत्व को जानते थे। वे व्यापारियों को सुविधाएं देते थे। मारूकच्छा में आने वाले जहाज़ों का मार्ग-दर्शन स्थानीय नौकाएं करती थीं और गोदियों में उनके लिए अलग स्थान की व्यवस्था की जाती थी।

सुदूर दक्षिण में तमिलहम् के बड़े सामंत समुद्र व्यापार को कई तरीकों से प्रोत्साहित करते थे। समुद्र के किनारे प्रकाश स्तम्भ बनाए गए थे, कई ऐसे जहाज़ घाट थे, जहां रोमन जहाज़ों से उतारे गए सामान पर सामंतों की मुहर लगाई जाती थी। भंडारण की सुविधा दी जाती थी और गोदामों में सामान के संरक्षण की व्यवस्था भी की जाती थी।

सुदूर दक्षिण में और दक्खन में भी समुद्री व्यापार की कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिसे कुछ आधुनिक विद्वानों ने "निर्देशित व्यापार" कहा है। दोनों क्षेत्रों के बीच अंतर यह है कि दक्खन में ये विशेषताएं अधिक सुस्पष्ट हैं, जबकि तमिलहम् में वे गौण स्तर पर हैं।

30.5 विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्के

यद्यपि वस्तु-विनिमय लेन-देन का सबसे अधिक सामान्य तरीका था, फिर भी चर्चाधीन अवधि में विनिमय के माध्यम के रूप में सिक्कों का प्रचलन था। प्रारंभिक प्रायद्वीप भारत के ज्ञात सिक्कों को मोटे तौर पर निम्नलिखित श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

- विभिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के
- रोमन सिक्के

30.5.1 स्थानीय सिक्के

प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के स्थानीय सिक्के चलते थे।

प्राचीन तमिल साहित्य में उनके बारे में थोड़ी-बहुत जानकारी मिलती है जैसे **कासु**, **कनम**, **पोन** और **वेनपोन**। परन्तु इन नामों के अनुरूप असली सिक्के नहीं पाए गए हैं। दक्खन के शिलालेखों में **कहापना** के प्रयोग का हवाला मिलता है, जो चांदी के सिक्के थे और स्थानीय रूप से बनाए जाते थे तथा **सुवर्ण** जो सोने के सिक्के होते थे, वे या तो रोमनों के थे या फिर कुशानों के।

भिन्न-भिन्न प्रकार के असली सिक्के और भिन्न-भिन्न धातुओं से बनाए जाते थे, जैसे सीसा, पोटिन (तांबे, ज़स्ते, सीसे और टिन का यौगिक), तांबा और चांदी प्रयुक्त की जाती थी। उनमें सबसे पुराने आहत सिक्के थे, जैसा कि आपने खंड 4 में पढ़ा है। छठी-पांचवी शताब्दी ई.पू. से आगे उत्तर-पश्चिम और उत्तर भारत में इन्हें बनाया जाने लगा। प्रायद्वीपीय भारत में भी विभिन्न प्रकार के आहत सिक्कों की ढलाई भिन्न-भिन्न स्थानों पर होती थी। अन्य किस्म के सिक्कों को बनाने में अन्य प्रकार की तकनीक जैसे कास्टिंग, डाइस्ट्राकिंग का धीरे-धीरे प्रयोग किया जाने लगा। दूसरी शताब्दी ई.पू. से छोटी-छोटी बस्तियों के राजाओं या महत्वपूर्ण **महारथी** सदस्यों तथा अन्य परिवारों ने अपने नाम से सिक्के बनाने शुरू किए। इसी क्रम में भिन्न-भिन्न धातुओं के सातवाहन शासकों के सिक्के संभवतः पहली शताब्दी ई.पू. में आए। उत्तरी दक्खन, गुजरात, मालवा तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में क्षत्रपण के चांदी के सिक्कों की बहुत मांग थी। इस प्रकार दूसरी शताब्दी ई.पू. और दूसरी शताब्दी ई. के अंत के बीच की अवधि में स्थानीय सिक्कों की बहुत सी किस्में बनी और ये प्रायद्वीपीय भारत में प्रचलित थे।

30.5.2 रोमन सिक्के

प्राचीन तमिल साहित्य में यवन (रोमन) जहाज़ों का उल्लेख मिलता है, जो तमिलहम् में बहुत बड़ी मात्रा में सोना लाते थे तथा काली मिर्च से इसका विनिमय होता था। रोमन सम्राट टिबरियस ने 22 ई. में सेनेट को लिखा था कि साम्राज्य की सम्पत्ति छोटी-छोटी वस्तुओं के बदले विदेशों में जा रही हैं। प्रथम शताब्दी ई. में दी नेशनल हिस्ट्री के लेखक प्लिनी ने शिकायत की थी कि रोमन की अतुल सम्पत्ति विलास की वस्तुओं के लिए भारत, चीन और अरब में गई। इन कथनों की पुष्टि प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न स्थानों जैसे आंध्र, कर्नाटक, तमिलनाडु और केरल में भारी मात्रा में पाए गए रोमन सिक्कों से होती है। अधिकांश सिक्के पहली शताब्दी ई.पू. और तीसरी शताब्दी ई. के बीच की अवधि के हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस अवधि के दौरान, प्रायद्वीपीय भारत से रोमन सम्पर्क बहुत अधिक था। अधिकांश रोमन सिक्के सोने और चांदी के हैं। तांबे के सिक्के यद्यपि नगण्य हैं, परन्तु पूर्ण अज्ञात नहीं हैं।

रोमन से धन उन वस्तुओं को खरीदने के लिए लाया जाता था जो पश्चिमी देशवासियों को प्रिय था। ये वस्तुएं थोक में रोमन वस्तुओं के विनिमय में नहीं ली जा सकती थीं। बड़े सौदे सोने के सिक्कों के माध्यम से होते थे। चांदी के सिक्कों का उपयोग अपेक्षाकृत छोटे सौदों के लिए किया जाता था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि रोमन का सोना मुद्रा के रूप में नहीं लिया जाता था बल्कि बुलियन के रूप में लिया जाता था। कुछ विद्वानों का यह मत है कि दक्षिण भारतीयों द्वारा रोमन का सोना आभूषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता था।

कुछ मुद्राशास्त्रियों का मत है कि रोमन सिक्के और आहत सिक्के दोनों देशों में साथ-साथ प्रचलन में थे। रोमन सिक्के भी आहत सिक्कों के लगभग बराबर वज़न के थे। कुछ खजानों में उन्हें आहत सिक्कों के साथ पाया गया है। दोनों ही लगभग एक जैसे ही घिसे हुए हैं। इससे प्रतीत होता है कि खजानों में रखने से पहले वे काफी समय तक प्रचलन में रहे हैं। दक्षिण भारत में रोमन सिक्कों की अनुकृतियां भी प्रचलन में थीं, विशेषकर कोरोमंडल समुद्र तट पर, जहां कुछ रोमन व्यापार के केन्द्र थे। संभवतः ऐसी बस्तियों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए नकली सिक्के बनाए गए हों।

30.6 व्यापार से राजस्व

खजाने के आय के नियमित स्रोत के रूप में राजस्व की वसूली सरकार की कार्यकुशलता सहित कई कारकों पर निर्भर करती है। उस समय प्रायद्वीपीय भारत के विभिन्न प्रदेशों में राजनीतिक परिस्थितियां एक समान नहीं थीं। इसलिए राजस्व प्रणाली भी एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भिन्न थी।

भारवाही पशुओं और ठेलों में सौदा ले जाने के लिए चुंगी वसूल की जाती थी। यह चुंगी उल्क

के रूप में जानी जाती थी। यह शब्द "शुल्क" का व्युत्पन्न रूप है जिसका अर्थ चुंगी है। इससे यह प्रतीत होता है कि चुंगी का विचार उत्तर भारत से लिया गया है। फिर भी कहा जाता है कि दक्षिण के सभी अभिषिकत सामंत और कम महत्वपूर्ण सामंत, विशेषकर **यवनों** के साथ व्यापार करने में बहुत इच्छुक होते थे। इससे स्पष्ट है कि वाणिज्य से उन्हें अच्छी आमदनी होती थी।

चोल के बंदरगाह नगर कावेरीपुम्पपट्टिनम में सौदों की वस्तुओं पर चोल मुहर लगाने के लिए चोल शासक के एजेंट होते थे। इस मुहर में बाघ का चित्र अंकित था। वस्तुओं पर चुंगी भी ली जाती थी। इस संबंध में विस्तृत ब्यौरे उपलब्ध नहीं हैं।

इसके अलावा, ऐसा प्रतीत होता है कि सातवाहन के राज्य में कराधान अधिक नियमित और प्रणालीबद्ध रहा है। व्यापार की प्रत्येक वस्तु पर चुंगी वसूल की जाती थी। प्रत्येक प्रमुख शहर में व्यापारियों पर सीमा शुल्क और विभिन्न चुंगी कर लगाए जाते थे। कहीं भी ऐसे करों और चुंगियों की दरों का उल्लेख नहीं है। कर-आय का एक और स्रोत नौघाट था।

कहा जाता है कि पश्चिमी भारत के क्षत्रप्पा शासक नहापना का दामाद और प्रतिनिधि उशावदत्ता ने नदियों पर कर-रहित नौघाटों की व्यवस्था की थी। राजस्व नकद लिया जाता था।

दस्तकारों को अपने उत्पादों पर शुल्क देना पड़ता था। इसे कारूकारा के नाम से जाना जाता था (कारू + दस्तकार और कारा + कर)।

इस अपूर्ण सूचना से कोई भी यह कह सकता है कि शासन करने वाले वर्ग को व्यापार और वाणिज्य से पर्याप्त आय होती थी।

बोध प्रश्न 2

1) बताइए कि निम्नलिखित में कौन-से कथन सही (√) हैं या गलत (×):
   i) तमिलम् में कई ऐसे मार्ग थे, जो भीतरी क्षेत्रों को नदी घाटियों की बस्तियों, तटीय कस्बों और शासक सामंत की राजधानियों से जोड़ते थे। (   )
   ii) सातवाहनशासकों ने व्यापार मार्गों में जल विभाजक बनवाए थे और उनके रख-रखाव के लिए अधिकारी नियुक्त किए थे। (   )
   iii) चाहे उत्तर में पाए गए हों या दक्षिण में, आहत सिक्कों का वज़न समान था। (   )
   iv) प्राचीन दक्षिण भारत में रोमन स्वर्ण सिक्कों का उपयोग केवल आभूषणें के लिए किया जाता था। (   )
   v) व्यापारियों द्वारा दिया गया कर कारूकारा कहलाता था। (   )

2) लगभग 50 शब्दों में प्राचीन दक्खन और दक्षिण भारत में व्यापारी मार्गों के तुलनात्मक अनुभव का उल्लेख कीजिए।

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

3) दक्षिण भारत में स्थानीय सिक्कों पर तीन पंक्तियाँ लिखिए।

   ....
   ....
   ....

4) चांदी के आहत सिक्कों पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

   ....

....

....

....

....

5) रोमन सिक्कों और दक्षिण भारत में उनके उपयोग पर सात पंक्तियाँ लिखिए।

....

....

....

....

....

....

....

30.7 तोल और माप

विनिमय की विकसित प्रणाली के लिए नियमित माप और तोल आवश्यक है। इससे किसी वस्तु को तोलना, मापना और गिनना संभव है, जब कोई उसे खरीद रहा है या बेच रहा है तो विनिमय आसान और कारगर होता है। क्रेयता और विक्रेयता को खरीदी गई या बेची गई वस्तु की मात्रा या आकार के बारे में किसी प्रकार का संदेह नहीं रहता है। दक्खन में जहां व्यापार केन्द्रों में विभिन्न वस्तुओं का व्यापार एक नियमित कार्य था वहां सही-सही माप का विचार भी अवश्य विद्यमान रहा होगा। भिन्न-भिन्न मूल्य वर्ग के सिक्के जारी किए गए थे और भूमि **निवर्तन** के अनुसार मापी जाती थी।

सुदूर दक्षिण में **मा** और **वेलि** भूमि के माप थे। यहां कर देने के लिए अनाज **अम्बानम** में तोला जाता था। संभवतः यह बड़ा तोल था। छोटे मापों के रूप में **नाली, उलाकू** और **अलाक** भी जाने जाते हैं।

तराजू से तोला जाता था। तराजू शायद एक डंडा होता था जिसमें निशान लगे होते थे। यहां तक छोटी से छोटी वस्तु भी तराजू से तोली जा सकती थी। तराजू पर सोना तोलने की बात भी हमें बताई गई है।

दिन-प्रतिदिन के लेन-देन में अनाज (एल), धान अनाज (नेल), अंगुलियों और हाथ की लंबाई के अनुसार रेखीय माप में व्यक्त किए जाते थे।

30.8 शहरी केन्द्र

उपर्युक्त चर्चा के दौरान हमने प्रारंभिक प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार के वाणिज्यिक विस्तार के विभिन्न पहलुओं का उल्लेख किया है। इस प्रारंभिक व्यापार से कई शहरी केन्द्रों के उद्भव और विकास में बहुत प्रोत्साहन मिला। हम दक्खन के उन केन्द्रों का वर्णन शुरू करेंगे जहां शहरी विकास के स्पष्ट रूप दिखाई देते हैं।

पश्चिमी और पूर्वी समुद्र तटों पर कई बंदरगाह थे। आन्ध्र के तटीय प्रदेश में गोदावरी और कृष्णा के डेल्टा में कुछ महत्वपूर्ण केन्द्र थे। यहां से जहाज़ मलय प्रायद्वीप और पूर्वी आर्चिपेलागो को जाते थे। परन्तु पश्चिमी बंदरगाह मारूकच्छा (मरूच), सोपारा और कल्याण भारत-रोमन व्यापार की प्रारंभिक अवस्था में अधिक पुराने और महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं।

भीतरी इलाके में बड़े और छोटे शहरी केन्द्र थे: प्रतिस्थान (पैठाण), टागरा (टेर), भोगवर्धन (भोकरदन), करहाटका (कराड), नासिक, वैजयंती, धान्यकटक, विजयपुरी (नागार्जुन कुंडा)

आदि थे। हम निम्नलिखित कारकों का पता कर सकते हैं, जिनके फलस्वरूप इन केन्द्रों का उद्‌भव हुआ, जो सामान्य ग्रामीण बस्तियों से भिन्न थे :

i) कृषि का भीतरी प्रदेश जो शहरी केन्द्र में रहने वाले भिन्न-भिन्न सामाजिक वर्गों के उपभोग के लिए आवश्यक अतिरिक्त अनाज पैदा करने में सक्षम थे।

ii) व्यापारी, कारीगर, हस्तशिल्पी ऐसे व्यावसायिक वर्गों का उदय, जो खाद्यान्न उत्पादन से सीधे जुड़े हुए नहीं थे।

iii) ऐसे संगठनों का उदय, जो व्यापारियों और कारीगरों के कार्यों को संगठित करते थे।

iv) स्थानीय और विदेशी विनिमय में अपेक्षित जिंसों के संग्रह की सुविधाएं तथा नौवहन विकास।

v) केन्द्रों को अधिशेष सामग्री भेजने तथा सहायता और सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी सक्षम शासक वर्ग।

vi) मुद्रा प्रणाली का आविर्भाव।

vii) लेखन प्रक्रिया का विस्तार जो गणना और लेखबद्ध करने के लिए आवश्यक है।

कार्यात्मक दृष्टि से शहरी केन्द्र विभिन्न श्रेणियों के थे। प्रशासनिक केन्द्र, संग्रहकर्ता केन्द्र, छावनी, विदेशी व्यापार केन्द्र, विपणन और विनिर्माण केन्द्र। फिर भी, इनमें से अधिकांश कार्य एक ही शहरी केन्द्र में किया जा सकता था।

अधिकांशतः संगम कविताओं तथा अन्य साहित्यिक लेखों के संदर्भों के आधार और कुछ सीमा तक पुरातत्व के आधार पर तमिलम् में तीन अलग-अलग किस्म के केन्द्रों का पता लगाया जा सकता है :

- ग्रामीण विनिमय केन्द्र;
- अंतर्देशीय विपणन नगर; और
- बंदरगाह

विभिन्न **तनाई** या आर्थिक क्षेत्रों के बीच जीविका की वस्तुओं के विनिमय की प्रक्रिया के दौरान सम्पर्क स्थलों के रूप में कई कन्द्रों का आविर्भाव हुआ। अधिकतर ये सम्पर्क स्थल पारंपरिक मार्गों के मिलन केन्द्र पर होते थे।

इनमें से कुछ केन्द्र नियमित विनिमय कार्यों के कारण बहुत सक्रिय हुए। इसलिए आधुनिक परिभाषा के अनुसार इन स्थानों को "शहरी" केन्द्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। फिर भी, समकालीन समाज उन्हें सामान्य कृषिक बस्तियों से भिन्न समझता था। अंर्देशीय कस्बे जैसे उदैपुर (वर्तमान तिरूचिरापल्लि के समीप), कांची (कांचीपुरम्) और मदुरै के बाज़ार थे। वे पूर्णतः शहरी केन्द्रों के रूप में विकसित हुए।

पट्टिनम या बंदरगाह भी शासकों के संरक्षण में काफी सक्रिय थे। वहां कई ऐसे केन्द्र थे। पूर्वी तट पर : पुहार अथवा कावेरीपुम्पट्टिनम (चोलों का), अरिकमडु, कोरकाई (पांड्याओं का) थे; पश्चिमी तट पर मुज़रिस और टिनडिस (चेराओं का) बकरे और नेलेयंदा वे समुद्री व्यापार के केन्द्र थे और अरिकमेडु जैसे कुछ **यवनों** की बस्तियां थी। बंदरगाह के अंदर मुज़रिस बहुत व्यस्त केन्द्र था, यहां हर प्रकार के जहाज़ों की भीड़ रहती थी और बड़े-बड़े गोदाम और मार्केट थे।

चूंकि बंदरगाहों पर व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था इसलिए पट्टिनम स्थानीय विनिमय केन्द्रों के नेटवर्क से जुड़े हुए नहीं थे। वे मुख्य रूप से "विदेशी व्यापार के केन्द्र" बने रहे और शासक तथा धनी वर्ग उनके ग्राहक थे। इस प्रकार इन केन्द्रों की प्रगति का कारण विदेशी व्यापार था। विदेशी व्यापार के ह्रास से ये केन्द्र भी कमज़ोर पड़ गए और धीरे-धीरे समाप्त हो गये।

इसलिए निम्नलिखित के अभाव के फलस्वरूप इन शहरी केन्द्रों का स्वरूप बना थाः

क) स्थानीय विनिमय नेटवर्क से संबंध

ख) दस्तकारी विशेषज्ञता

ग) मठों और संगठनों जैसी संस्थाओं का सहयोग

30.9 समाज पर व्यापार और शहरी केन्द्रों का प्रभाव

प्रारंभिक व्यापार और शहरी विकास कार्यों से तमिलहम् के सामाजिक जीवन में बहुत अधिक आधारभूत परिवर्तन नहीं आए हैं। स्थानीय विनिमय आजीविका प्रधान था। इसका तात्पर्य यह है कि वे मदें जो स्थानीय विनिमय के माध्यम से लोगों के पास जाते थे, विभिन्न वर्गों के लोगों के नियमित खपत की होती थी। दूरस्थ व्यापार अधिकतर विलास की वस्तुओं का होता था, जो केवल सामंतों के नातेदारों और उनके व्यक्तियों तक सीमित था। व्यापारियों की सम्पत्ति एवं समृद्धि जैसे कि भिक्षुओं को उनके उपहार से दिखाई देती थी, वह अधिक प्रभावकारी नहीं थी।

कारीगरों और व्यापारियों का कोई संगठन नहीं था। वे परिवार के सदस्यों या निकटतम संबंधियों की तरह मिल-जुलकर काम करते थे। इस प्रकार वे केवल जनजाति स्वरूप के नातेदारी संबंधों के अनुसार काम करते थे।

दक्खन में स्थिति भिन्न थी। स्थानीय व्यापारी वर्ग की भागीदारी दूरस्थ व्यापार के लिए भी आवश्यक थी। इसलिए इस व्यापार के लाभ समाज के निचले स्तरों में भी आए। कारीगरों, शिल्पियों और व्यापारियों की सम्पत्ति और समृद्धि बौद्ध मठों को उनके दान में झलकती थी।

कारीगरों और व्यापारियों के संघ संगठनों के कारण पुराने नातेदारी संबंध टूटने लगे और हस्तशिल्प की वस्तुओं के उत्पादन तथा व्यापार के कार्यों में नए किस्म के संबंध बनने लगे।

शासकों, वाणिज्य वर्गों और बौद्ध मठों के बीच संबंधों से दक्खन की अर्थव्यवस्था और समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन शुरू हुए।

बोध प्रश्न 3

1) नीचे दिए गए कथनों में सही (√) या गलत (×) का निशान लगाइए:
   क) **मा** और **वेलि** रेखीय माप थे। ( )
   ख) प्रारंभिक दक्षिण भारत में तटीय कस्बों की अपेक्षा अंतर्देशीय कस्बे अधिक सक्रिय थे। ( )
   ग) संघों ने कारीगरों और व्यापारियों के बीच उत्पादन संबंधों में कुछ परिवर्तन शुरू हुए। ( )
   घ) विलास की वस्तुओं का प्रचलन सम्राट के सदस्यों और उनके परिवार में ही था। ( )
   च) दक्खन में दूरस्थ व्यापार स्थानीय विनिमय नेटवर्क पर आश्रित नहीं था। ( )

2) मठों और व्यापारियों के बीच संबंधों पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....

3) स्थानीय व्यापारियों और कारीगरों पर व्यापार तथा शहरीकरण के प्रभाव पर पांच पंक्तियाँ लिखिए।

....
....
....
....
....

30.10 सारांश

इस इकाई में प्राचीन प्रायद्वीपीय भारत में व्यापार और शहरी केन्द्रों के विस्तार के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर चर्चा करने का प्रयास किया गया है। इस इकाई में आपने निम्नलिखित के बारे में पढ़ा है:

- विभिन्न प्रकार के व्यापार और तरीके जिनमें विनिमय होता था,
- कारीगरों और व्यापारियों का संघ,
- विनिमय सुविधाएं जैसे परिवहन, भंडारण और नौवहन
- विभिन्न प्रकार के सिक्के जो विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयुक्त होते थे,
- व्यापार से राजस्व,
- शहरी केन्द्रों के विशिष्ट लक्षण और कार्य,
- प्रायद्वीपीय भारत के विभन्न क्षेत्रों में व्यापार और शहरीकरण का प्रभाव।

30.11 शब्दावली

आहत सिक्के: इन सिक्कों के निर्माण में धातु को पीट-पीटकर चपटा बनाया जाता था और तब उन्हें पट्टियों में काटा जाता था। खाली चद्दर को अपेक्षित भार के टुकड़ों में काटा जाता था। पहले तो ये टुकड़े वर्गाकार या आयताकार थे। सही भार के लिए इनके किनारों को छिला जाता था। इसलिए इन सिक्कों का आकार एक जैसा नहीं होता था। पंचित्र से उन पर प्रतीक चिन्ह का ठप्पा लगाया जाता था। प्रत्येक पंचित्र का प्रतीक बिल्कुल पृथक होता था।

निर्देशित व्यापार: इसका सबध उस व्यापार से है जिसमें व्यापार के केन्द्र होते थे, जिनमें लंगरगाह और भंडारण की सुविधाएं तथा नागरिक एवं कानूनी संरक्षण और भुगतान विधि पर कराकर जैसी सुविधाएं दी जाती थीं।

निगम: व्यापारियों और कारीगरों का संघ

पोतिन: तांबा और टीन का यौगिक

मुद्राशास्त्री: वे विद्वान जो सिक्कों के अध्ययन में विशेषज्ञ होते हैं

30.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उप-भाग 30.2.1 देखिए।
2) क) (×)
   ख) (√)
   ग) (×)
   घ) (×)
   च) (√)
3) भाग 30.3 देखिए।
4) भाग 30.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) i) (√)
   ii) (√)

iii) (√)

iv) (×)

v) (×)

2) भाग 30.4 देखिए।

3) भाग 30.5 देखिए।

4) भाग 30.5 देखिए।

5) भाग 30.5 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) क) (×)

ख) (×)

ग) (√)

घ) (×)

च) (×)

2) भाग 30.8 देखिए।

3) भाग 30.9 देखिए।